

**BRAHMAVART P.G. COLLEGE, MANDHANA  
KANPUR NAGAR**

**प्रश्नBANK**

**FOR CSJM UNIVERSITY'S  
ODD SEMESTER EXAMINATION**

**M.A.III SEM (Hindi)**

**Paper-III<sup>rd</sup> (Elective)**

**सूरदास  
(A010904T)**

**35+SHORT ANSWER QUESTIONS  
Brief and Intensive Notes**

**Dr. Amit Kumar Dubey  
Department of Hindi, Brahmavart P.G. College,  
Kanpur  
&  
Priyanka Kamal  
Research Scholar U.G.C. NET & J.R.F.**

एम.ए. तृतीय सेमेस्टर  
वषय- हिन्दी  
तृतीय प्रश्नपत्र (वैकल्पिक)  
सूरदास  
(A010904T)

प्रश्न 1. पुष्टिमार्गीय भक्ति के प्रमुख अंगों का उल्लेख करते हुए सूर-काव्य में उनका स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की परिभाषा इस प्रकार बतायी है-

"कृष्णानुग्रहरूपाहिपुष्टिः ।"

(पुष्टि-रूप कृष्ण का अनुग्रह है ।) पुष्टि शब्द स्त्री लंग है। इसी अर्थ का पुल्लिङ्ग शब्द है- पोषण । वल्लभाचार्य ने पोषण की जो परिभाषा की है, उसका आशय भी यही है-

'पोषणं तदनुग्रहः ।' (कृष्ण का अनुग्रह अर्थात् कृपा ही पोषण है।)

संसार के सभी कष्टों का कारण अ वद्या है। भगवान् का अनुग्रह होने पर ही अ वद्या का नाश होता है। अ वद्या का नाश होते ही जीव ईश्वरोन्मुख हो जाता है। सूरदासजी ने अपने एक पद के अन्त में भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की है क वे सूर की अ वद्या का पूर्ण वनाश कर दें- सूरदास का पुष्टि-मार्ग के अनुयायी भक्त क वयों में व शष्ट स्थान था। सूर को पुष्टि-मार्ग का जहाज कहा जाता था। सूर के पदों में जितनी तल्लीनता कृष्ण के प्रति है। उतनी अन्य अवतारों के "ति नहीं है। यह अनन्यता पुष्टि-मार्ग का ही प्रभाव है। जैसे- सूरदास की सबै अ वद्या दूरि करहु नन्दलाल ।

(1) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।

जैसे उड़ जहाज कौ पंछी,

फर जहाज पै आवै।

(2) मेरे जिय ऐसी आनि बनी।

छाँड़ गुपाल और जो सु मरों तो लाजों जननी ।

प्रश्न 2. दृष्टिकूट शब्द का क्या तात्पर्य है। सूर । सूर वर चत दृष्टिकूटों की की वशेषताएँ बताइए।

उत्तर- दृष्टिकूट का शाब्दिक अर्थ है- दृष्टि देखने की शक्ति + कूट = पर्वत अथवा छल अर्थात् दृष्टि को छलने वाली या रोकने वाली पद्धति। जिस प्रकार दृष्टि के सामने आया हुआ पर्वत सामने का दृश्य देखने में बाधा बन जाता है, उसी प्रकार दृष्टिकूट पदों की रहस्यात्मक शब्द-रचना अर्थ-बोध में बाधा खड़ी करती है। दृष्टिकूट पदों का अर्थ समझ लेने के बाद उतनी ही

प्रसन्नता होती है, जितनी क कसी को पर्वत के उस पार का दृश्य देख लेने पर हो सकती है। 'हिन्दी शब्द-सागर' के अनुसार, "कोई ऐसी क वता जिसका अर्थ क वता के वाचक अर्थ से न समझा जा सके, कन्तु प्रसंग और रूढ अर्थों से जाना जाये, उसे दृष्टिकूट कहते हैं।" सूर के दृष्टिकूटों के अनेक भेद कये गये हैं। इनमें कथात्मक, आलंकारिक और ध्वनि-परिवर्तक तीन भेद प्रमुख हैं।

सूरसागर का सर्वप्रसद्ध दृष्टिकूट इस प्रकार है-  
कहत कत परदेसी की बात।

मन्दिर अध अव ध बादि हम सौं हरि अहार चल जात।

स सरिपु बरष, सूर रिपु जुग बर हररिपु कीन्हों घात।

मघ पंचक लें गयौ साँवरो तातैं अति अकुलात ।

नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि सोई बनै अब खात ॥

प्रश्न 3. सूर की प्रेम वदग्धता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- सूर का भक्त-पथ अधिक मनोरंजक और मनोवैज्ञानिक है। सूर दाम्पत्य की आसक्ति, स्वकीया, परकीया तथा सखा भाव पर अधिक बल देते हैं। सूर के कृष्ण के सर्वश्रेष्ठ भक्तों में गोपयाँ आती हैं। इसी कारण सूर के भक्ति भाव में गुह्यता अधिक है। यह भक्ति प्रेम-प्रधान है। वैसे भी भक्ति भाव, श्रद्धा भाव और प्रेम भाव का मश्रण से है। सूर की भक्ति में श्रद्धा भाव कम और प्रेम भाव अधिक है। सूर की भक्ति में अनुभूति की प्रधानता है। सूर माधुर्य और सरलता लाने के उद्देश्य से लोक और वेद के बन्धन को स्वीकार नहीं करते। सूर की गोपयाँ कृष्ण के प्रति प्रेम के कारण लोक और वेद कसी का बन्धन स्वीकार नहीं करतीं। सूर की भक्ति में सबसे श्रेष्ठ प्रेम है। सूरदास प्रेम में ही तल्लीन होकर रहना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में लोक व्यवस्था का 'निर्माण तो प्रेम से होगा ही, परलोक भी सुधर जायेगा। इस प्रकार स्पष्ट है क सूरदास के मतानुसार व्यक्ति को प्रेम छोड़कर अन्य झंझट में नहीं फँसना चाहिए। सूर के प्रेम के वषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है- "सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। 'सूरसागर' में प्रेम के पात्र श्रीकृष्ण हैं। गोपयाँ और राधा उनसे अत्यधिक प्रेम करती हैं। गोपयाँ के प्रेम में रूप लप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। सूर ने श्रीकृष्ण को इतना अधिक सुन्दर चित्रित किया है क गोपयाँ और राधा उनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहतीं। सूर की गोपयाँ कृष्ण के रूप पर अपने आपको बलदान करने को प्रस्तुत हैं। उनके कथन 'प्रीति करि दीन्हों गये छुरी' में यह भाव स्पष्ट है। कृष्ण के रूप ने गोपयाँ को प्रेम ववश बना दिया है। कृष्ण का रूप गोपयाँ के हृदय में ऐसा गढ़ गया है क कसी प्रकार शेष ही नहीं है। यह बात गोपयाँ के इस कथन से स्पष्ट होती है-

'उर में माखन चोर गढ़े।'

प्रश्न 4. भ्रमरगीत काव्य के प्रतिपाद्य वषय का उल्लेख करते हुए सूर के 'भ्रमरगीत' की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

उत्तर- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्दैर्घ्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है। इसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है। ऐसा सुन्दर उपलम्भ नहीं मिलता।" काव्य-ग्रंथों में उद्धव से अपने निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान और योग कथा द्वारा गोपियों को प्रेम से वराट करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी पेटभर छकती हैं, कभी उनसे अपनी ववशता और दीनता का वर्णन करती हैं। उद्धव के बहुत रोकने पर वे कहती हैं  
ऊधौ ! तुम अपनी जतन करौ।

हित की कहत, कुहित की लागत, कत बेकाज ररौ ।।

जय करौ उपचार आपनौ, हम जो कहति हैं जी की।

कछू कहत, कछुवै कहि डरत, धुन दे खयत नहि नी की ॥

'भ्रमरगीत' का महत्त्व एक बात से और बढ़ गया है। भक्ति शरोमण सूर ने सबगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से, हृदय की अनुभूति के आधार पर किया है, तर्क पद्धति पर नहीं, किया है।

सूर ने इस प्रसंग के द्वारा दो उद्देश्यों की पूर्ति की है। इस प्रसंग की दो विशेषताएँ हैं-एक इस प्रसंग के सूर ने वप्रलम्भ श्रृंगार की मधुर व्यंजना की है। दो सूर सच्चे प्रेम-मार्ग को त्याग और पवत्रता के परिचय रखने में पूर्ण सफल हुए हैं। सूर ने ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता सद्ध की है।

'भ्रमरगीत' का उद्देश्य-ज्ञान पर भक्ति की वजय 'भ्रमरगीत' का प्रमुख उद्देश्य है। कृष्ण- प्रेम दीवानी गोपियों के सामने ज्ञानी उद्धव का पराजित हो जाना इसका प्रमाण है।

प्रश्न 5. सूर की भाषा पर सारगर्भत टिप्पणी कीजिए।

उत्तर- सूर की भाषा भावों के अनुरूप है। व्यंग्य तथा वद्रूप करते समय सूर की भाषा व्यंग्यमयी और चपल हो जाती है। ऐसे प्रसंगों में बोलचाल के शब्दों की अधिकता है, जैसे-

ऊधौ ! जान्यौ नाम तिहारौ ।

जानै कहा राजगति लीला, अन्त अहीर बिचारौ।

भावातिरेक-प्रधान स्थानों की भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग नहीं है। वहाँ भाषा कव के अन्तस् से उभर जान बनती है, वहाँ भाषा में उदासीनता अधिक बढ़ जाती है। व्यंग्य करते समय जो खीझ और झुंझलाहट दिखाई देती है, वह यहाँ दीनता, वषाद और अवसाद में बदल जाती है। मनो मान सक स्थिति के अनुसार भाषा भी दीन, ववश और अवसादमयी हो जाती है, जैसे-

काहे कौ गोपीनाथ कहावत ।

जो पै मधुकर कहत हमारे, गोकुल काहे न. आवत ।।

सूर की भाषा सूक्ष्म मान सक प्रवृत्त के अनुरूप देखी जा सकती है। शब्दों की प्रतिकृति तथा संबोधित 'रे' के द्वारा भौरे को उड़ाने का कवचपूर्ण वधान तथा साथ-साथ माधुर्य इन माताओं में दर्शनीय है-

जा जा रे भौरा दूर-दूर।

रंग रूप और एकहि मूरति, मेरो मन कयौ चूर-चूर ॥

ब्रजभाषा के प्रयोग में सूर को कुछ विशेषताएँ दृष्टव्य हैं। वैदिक 'ऋ' के स्थल पर 'रि' का प्रयोग करके सूर ने भाषा को कोमल बताने का प्रयास किया है-

ब्रज तें द्यै रितु पै न गयीं।

ऐसौ सुनियत है है सावन ॥

प्रश्न 6. सूर साहित्य में मुरली का महत्व निरूपित कीजिए।

उत्तर- सूर वल्लभाचार्य के शिष्य होने के नाते उनके द्वारा स्थापित 'पुष्टि-मार्ग' में श्रद्धा रखते थे। वल्लभाचार्य के पुष्टि-मार्ग में मुरली का विशेष महत्व है। महाकवि और भक्त शरोमण सूरदास ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल से मुरली की उत्पत्ति अलौकिक सद्ध करने में समानता प्राप्त की है। सूर की इस वषय सम्बन्धी अलौकिकता को समझने के लिए पुष्टि-मार्ग में इनका आध्यात्मिक रूपक देखना उचित प्रतीत होता है।

जीवों पुष्टि-मार्ग में मुरली को जो आध्यात्मिक रूपक दिया गया है। उसके अनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और मुरली उनकी योगमाया है। वह अपने गम्भीर और आकर्षक स्वर से समस्त का आवाहन करती हैं। यह उनकी मोह निद्रा को तोड़कर उन्हें जागरूक कर देती है। गोप्यों जीवों का प्रतीक है। श्रीकृष्ण उन्हें अपनी योग-माया मुरली के स्वर द्वारा अपने पास बुलाते हैं। 'उन्हें उस मुरली के स्वर का इतना आकर्षण होता है कि वे अपने सारे गृहकार्यों को छोड़कर उनके निकट जा पहुँचती हैं। यही मुरली का आध्यात्मिक रूपक है, जिसके आधार पर सूर आदि पुष्टिमार्गीय भक्त कव्यों ने मुरली के अलौकिक प्रभाव का वर्णन किया है। है। भागवत में वेणु-वादन का यही रूप वर्णित है।

गोप्यों की दृष्टि में मुरली बाँस का निर्जीव टुकड़ा नहीं, अपितु सचेतन प्राणी है। मुरली के प्रति कृष्ण का आकर्षण देखकर गोप्याँ उसे अपनी सौत समझने लगती हैं। जैसे-

अधर रस मुरली लूटन लागी।

जा रस कौ षट्ति तुन गायौ सो रस पयत सभागी।

कहाँ रही, कहाँ ते यहाँ आयी, कौने याहि बुलायी।

चकत कहा भई ब्रजवा सनि यह तौ भलीन आइ ।

सावधान तुम होत नाहिं क्यों उपजी बुरी बलाइ।

सूरदास प्रभु हम पर याकौ, कीन्हीं सौति बजाइ ॥

प्रश्न 7. पुष्टि मार्ग में रास का आध्यात्मिक महत्व बताइए ।

उत्तर- पुष्टिमार्ग में रास का भी मुरली के समान ही महत्व है। सूर ने रास को गंधर्व ववाह की संज्ञा दी है। रास का आध्यात्मिक अर्थ है- जीव और ब्रह्म का आध्यात्मिक संयोग। परब्रह्मरूपी कृष्ण अपनी योगमायारूपी मुरली से गोपीरूप समस्त जीवों को अपने पास बुलाते हैं और गोपीरूप समस्त जीव उनके समस्त जीव उनके समीप एकत्र होकर आनन्द-लाभ करते हैं। रास में गोपयाँ कृष्ण को अपना सब कुछ समर्पण करके उनकी ही हो जाती हैं। इस प्रकार वे परकीया न रहकर स्वकीया बन जाती हैं। रास से यही अर्थ अभिप्रेत है कि जीव अपना सब कुछ समर्पण करके स्वयं भी भगवदार्पण हो जाता है। जब गोपयाँ अभिमान प्रकट करती हैं तो कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं। जब उनके वरह में व्याकुलता बढ़ती है तो पुनः प्रकट हो जाती हैं। इससे यही तात्पर्य है कि जब तक जीव के मन में अहंकार रहता है, तब तक भगवान् के दर्शन नहीं होते और जब वह सच्चे मन से भगवान् के वरह में व्याकुल हो जाता है, तब भगवान् दर्शन देते हैं। जब तक अहंकार रहता है, तब तक आत्मसमर्पण नहीं हो पाता, अतः भगवान् दूर रहते हैं। ठीक इसके विपरीत जब अनन्य प्रेमजनित वरह-वेदना जाग्रत होती है तो भगवान् अपना लेते हैं। रास के इसी आध्यात्मिक रूपक के महत्व को सूर ने समझा है और इसी लिए उसे अत्यधिक महत्व दिया है। श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी भक्ति की अन्तिम प्रशान्ति तथा तन्मयता रास में ही मानी है। सूर ने भी इसी लिए रास का पर्याप्त वर्णन किया है।

प्रश्न 8. सूर की गोपियों का परिचय दीजिए।

उत्तर- भदत्त शरोमण सूरदास ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है तथा गोपियों को उनकी शक्ति बताई है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भक्ति अपने आश्रय से कभी अलग नहीं होती है। इस सद्धान्त के अनुसार कृष्ण और गोपियों में कोई अन्तर नहीं है। सूरदास ने इस रस में यह एकता स्वीकार की है-

गोपी, ग्वाल, कान्ह है नाहीं, ये, कहूँ नेकु न न्यारे।

आध्यात्मिक दृष्टि से कृष्ण आत्मा हैं तो गोपयाँ इस आत्मा की वृत्तियाँ हैं। आत्मतत्त्व के एक होते हुए भी वृत्तियाँ अनेक तथा भन्न-भन्न रूप वाली हैं। यही कारण है कि आत्मतत्त्व के श्रीमद्भागवत और सूरसागर में अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। जैसे-

गोप जाति प्रतिच्छन्नदेवा गोपालरूपण।

(श्रीमद्भागवत)

गोपियाँ तथा गोपों के रूप में देवता ही प्रकट हुए हैं-

यह बानी कहि सूर सुरन की, भयों कृष्ण अवतार।

कह्यो सबनि बज जन्म संग, हमारे करहु बिहार ॥

इन रूपों अर्थात् भगवान् की प्रकृतिस्वरूपा तथा देव वगैरह गोपियों के अतिरिक्त कुछ गोपयाँ ऐसी भी थीं जो पूर्व जन्म में देव-कन्याओं, श्रुतियों, तपस्वियों तथा ऋषियों के रूप में रह चुकी थीं। सूर ने स्पष्ट कहा है-

ब्रज सुन्दरि नहिं नारि, ऋचा श्रुति की सद आहिं।  
में ब्रह्मा और शव पुनि लक्ष्मी, तिन सम कोऊ नाहिं ॥

प्रश्न 9- वल्लभाचार्य पर टिप्पणी ल खए ।

उत्तर- वल्लभाचार्य को वल्लभ सम्प्रदाय का आदिआचार्य अथवा संस्थापक कहा जाता है। वल्लभ सम्प्रदाय में उन्हें महाप्रभु के रूप में सम्बोधित किया जाता है। कृष्ण को ब्रह्म, राधा को उनकी शक्ति और गोप्यों को उनकी वृत्तियाँ निश्चित किया है। वल्लभाचार्य ने भक्ति का जो मार्ग अपनाया, वह पुष्टिमार्ग कहा जाता है। उन्होंने भगवान् कृष्ण की कृपा को ही पुष्टि अथवा पोषण कहा है।

कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः, पोषणं तदनुग्रहः ।

सूरदास गौघाट पर निवास करते थे और वनय के पद बनाकर गाते थे। लोगों से सूरदास की प्रसूति सुनकर वल्लभाचार्य ने उन्हें अपने पास बुलाया और कुछ सुनाने का आदेश दिया। सूर ने प्रभु हों सब अतितन को टीकौ-पद वर्न। इसे सुनकर वल्लभाचार्यजी बोले-

"सूर है कै ऐसो धधियात काहे कौन है। कुछ भगवल्लोला वर्णन करि।"

इसके बाद वल्लभाचार्यजी ने सूरदास को वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित किया तथा श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई। इसके पश्चात् आचार्यजी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के आधार पर पद-रचना का आदेश दिया। इसके साथ ही वल्लभाचार्य ने सूरदास को गोवर्धन के मन्दिर में कीर्तन का दायित्व सौंपा। इसी कारण सूरदास को कीर्तनिया कहा जाता है।

वल्लभाचार्यजी का महत्व वल्लभ सम्प्रदाय और पुष्टि सम्प्रदाय के लए तो है ही, हिन्दी साहित्य के लए उनका महत्वपूर्ण योगदान है। अष्टछाप के रूप में जो कृष्णभक्त कवियों का समूह बनाया गया। उनमें चार उनके शिष्य हैं।

प्रश्न 10. सूर की राधा का परिचय दीजिए।

उत्तर--संस्कृत-साहित्य में कृष्ण द्वारा गोप्यों के साथ रास रचाने का जो वर्णन मिलता है, उसमें राधा का नाम नहीं है। श्रीमद्भागवत में भी राधा का नाम नहीं है। हिन्दी की कृष्ण-भक्ति की कवियों में राधा, कृष्ण की सर्वाधिक प्रिया के रूप में वर्णित हैं। जिस प्रकार राम के साथ सीता का नाम जुड़ गया है। उसी प्रकार कृष्ण के साथ उनकी पत्नी रुक्मिणी का नहीं, राधा का नाम लगा जाता है। सीताराम और राधेश्याम इसी प्रकार के शब्द हैं।

सूरदास के जो राधा-सम्बन्धी पद 'सूरसागर' में प्राप्त होते हैं। उनमें राधा के पता का नाम वृषभान और माता का नाम कीर्ति है। राधा वृषभानु गोप की पुत्री थीं। सूरदास ने राधा से कृष्ण का प्रथम मिलन-सम्बन्धी पद इस प्रकार रचा है-

बूझत स्याम कवन तै गोरी।

कहाँ रहति, का की है बेटी, देखी नाँहि कबहुँ ब्रज खोरी। काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति आपनी पोरी। सुनति रहति सवनन नन्द ढोटा, करत फरत माखन दध चोरी। तुम्हरो कहा चोरि हम लैहें, खेलन चलहु संग मल जोरी। सूरदास प्रभु र सक सरोमनि, बातनि भुरइ राधका भोरी ॥

कृष्ण का राधा के साथ ववाह नहीं हुआ था, पर राधा अपने आपको कृष्ण की पत्नी ही मानती थीं। पुष्टिमार्गीय कृष्णभक्त राधा को परकीया नहीं, स्वकीया मानते हैं। राधा के वयोग पर आधारित पद भी उन्हें श्रीकृष्ण की पत्नी ही सद्ध करते हैं। जैसे- बिनु माधौ राधा तन सजनी सब वपरीत भई।

गयी छपाइ छपाकर की सुध रही कहाँ अमई।  
अलक जुहुती भुजगंम हुसी, वट लट मनहुँ भई।  
आँ खयाँ हती कमल पंखरी-सी, सुछ व निचोरि लई ॥

प्रश्न 11. अष्टछाप पर परिचयात्मक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक और वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक वल्लभाचार्य के शिष्य जो कृष्णभक्त थे, उनमें अनेक श्रेष्ठ कव थे। वल्लभाचार्य के गोलोकवास के बाद उनके पुत्र वठ्ठलनाथजी को आचार्य पद प्राप्त हुआ। वठ्ठलनाथजी के शिष्यों में अनेक भक्त अच्छे थे। वठ्ठलनाथजी ने चार अपने पता वल्लभाचार्य के शिष्यों में से तथा चार अपने शिष्यों में से श्रेष्ठ कव्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के कव्यों के नाम इस प्रकार हैं- (क) वल्लभाचार्यजी के शिष्य (1) सूरदास, (2) कुंभनदास, (3) परमानन्ददास, (4) कृष्णदास। (ख) वठ्ठलनाथजी के शिष्य (1) नन्ददास, (2) गोवन्दस्वामी (3) छीतस्वामी (4) चतुर्भुजदास इन आठों कव्यों ने पुष्टि-मार्ग के सद्धान्तों के अनुसार काव्य-रचना की। ये सभी कृष्ण के अनन्य भक्त थे और कृष्ण की भक्ति में तन्माय रहे। इन सभी की कवता की भाषा ब्रजभाषा थी। ये सभी कव के साथ-साथ गायक भी थे। इन्होंने स्वरों, तालों और रास-रागनियों से काव्य रचना की। ये अपने पदों को मधुरस्वर और आकर्षक लय में गाया भी करते थे। अष्टछाप के आठों कव श्रेष्ठ गायक थे। गोवन्दस्वामी के पदों को तानसेन लुक-छिपकर सुना करते थे। तानसेन उस समय संगीत-वद्या के सम्राट् कहे जाते थे। सूरदासजी भी अच्छे गायक थे। अकबर ने सूरदासजी का गाना सुनने की इच्छा व्यक्त की थी।

सूरदास पुष्टि-मार्ग के जहाज कहे जाते हैं। वे वात्सल्य रस के सम्राट् के रूप में प्रसिद्ध हैं। सूर को हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल की सगुण धारा की कृष्णभक्ति शाखा का प्रतिनिध कव माना जाता है। सूरसागर की प्रामाणिक रचनाएँ सूरदास, सूरसारावली और साहित्य-लहरी हैं। सूरसागर में सवा लाख पद बताये जाते हैं, पर अभी तक लगभग चार हजार पद ही प्राप्त हुए हैं। कुम्भनदास के केवल फुटकर पद पाये जाते हैं। इनका । इनका कोई ग्रन्थ नहीं है। परमानन्द दास के पदों सूरदास का संग्रह 'परमानन्द-सागर' है। कृष्णदास की रचनाएँ 'जुगलमक्षान चरित', 'भ्रमरगीत' और प्रेम गव निरूपण है।

छीतस्वामी के फुटकर पद लोगों से सने जाते हैं। गो वन्दस्वामी का कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता, केवल फुटकर पद मिलते हैं। चतुर्भुजदास की भाषा सुव्यवस्थित है। इन्होंने द्वादश-यश, भक्ति-प्रताप और हितजको मंगल की रचना की है। नन्ददास के भाई का नाम नन्ददास था।  
होंने अनेक पुस्तकें लखी हैं। जिनमें 'रासपंचाध्यायी' विशेष प्रसिद्ध है।

**प्रश्न 12.** सूर साहित्य में यमुना का महत्व बताइये।

उत्तर-सूर साहित्य में यमुना का वर्णन अनेक स्थानों पर आया है। कृष्ण के जन्म के पश्चात् तुरन्त उनका यमुना से सम्पर्क हुआ। वसुदेवजी कृष्ण को लेकर नन्द के यहाँ जा रहे थे जो उन्हें यमुना पार करनी पड़ी ! कृष्ण का बचपन और कशोर अवस्था ब्रज में बीती। ब्रज में यमुना नदी बहती है। कृष्ण जो रास रचाते थे, वह यमुना के तट पर ही होता था। श्रीकृष्ण ने मुरली बजाई तो सभी गो पयाँ उनके साथ रास रचाने के लए भागकर यमुना (र वतनया अर्थात् सूर्य की पुत्री) के किनारे पहुँची- जब हरि मुरली अधर धरी।

गृहव्यवहारथक आरज पथ तजक न संक करी।

म ल है स्यामहिं हंससुता तट आनन्द उमंग भरी ॥

बाल-कृष्ण का प्रथम मलन र वतनया अर्थात् सूर्य की पुत्री यमुना के किनारे पर ही हुआ था-  
खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।

गए स्याम र वतनया के तद, अंग लसति चन्दन की खोरी।

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन वसाल भाल दिये रोरी।

नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रलति झाकझो ।

सूर स्याम देखत ही रीझो नैन नैन म ल परी ठगोरी ॥

कृष्ण की मुरली की मादकता ने पूरे ब्रजवा सयों को तो मोहित किया ही था, यमुना पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा था। कृष्ण की मुरली सुनकर यमुना भी उलटी बहने लगी थी-  
मुरली गति वपरीत कराई।

जमुना उलटी धार चली बहि पवन थ कत सुनि बेनु ॥

में ब्रजवा सयों की यमुना का जल ब्रजवा सयों के दैनिक उपयोग में आता था। यमुना गायें पानी पीती थीं, ब्रजवासी नहाते थे तथा पीने के काम में भी यमुना का जल लया जाता था  
गो पयाँ यमुना का जल भरने के हेतु यमुना के तट पर जाया करती थीं-

जुवति इक आवति देखी स्याम।

गुमन की ओट रहे हरि आपुन, जमुना तट गयी बाम।

जल हिलोरि गागरि भरि नागरि, जबहीं सीस उठायौ।

घर कौं चली जायता पीछे, सर ते घट ढरकायौ ॥

गो पयाँ यमुना में स्नान करती थीं। सामूहिक रूप से स्नान करते हुए उन्हें वलम्ब हो जाता तो सासु, ननद उन्हें डाटती-फटकारती थीं। एक गोपी अपनी सखो से कह रही है-

सासु ननद घर त्रवास दिखावै ।

कब की गई न्हान तुम जमुना, यह कहि-कहि रिस पावै॥

प्रश्न 13. सूर साहित्य में वृन्दावन का महत्व बताइए ।

उत्तर- गायें चराने उत्तर-सूर साहित्य में वृन्दावन का महत्व भी कम नहीं है। कृष्ण वृन्दावन में गायें जाया करते थे। उस समय वृन्दोवन वन था। सूर ने वृन्दावन में कृष्ण के गायें चराने का वर्णन किया है-

चरावत वृन्दावन हरि धेनु ।

ग्वाल सखा सब संग लगाए खेलत है करि चेनु ॥

कृष्ण वृन्दावन में गायें ही नहीं चराते थे-अपने सखाओं के साथ छांक अर्थात् दोपहर का भोजन भी किया करते थे-

सखनि संग जैवत हरि छाक ।

प्रेम सहित मैया दै पठई, सबै बनाई है इक ताक।

सुबल सुदामा श्रीदामा म ल सब संग भोजन रुचकार ॥

ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत मुख लै मे ल सराहत जात ।

जो सुख कान्ह करत वृन्दावन सो सुख नहीं लोकहूँ जात ॥

सूरदास अपने इष्टदेव कृष्ण से जो याचना करते हैं, उसमें ब्रज में उनकी शरण की याचना भी है-

तुम ही मोकों डीढ कयो। नैन सदा चरननि पर राखे, मुख देखन न दियो । प्रभु मेरी तुम सकुच मटाई जोड़-जोड़ मांगत पेति । याँगौ चरन सरन वृन्दावन जहाँ करत नित कोल ॥

प्रश्न 14. वल्लभ सम्प्रदाय का सूर-साहित्य में स्थान निरूपित कीजिए।

उत्तर-वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रवर्तित भक्ति को वल्लभाचार्य सम्प्रदाय कहा जाता है। पुष्टिमार्ग ही वल्लभ सम्प्रदाय है। इन दोनों का साम्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है। वल्लभसम्प्रदाय शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। वल्लभ सम्प्रदाय वाले कृष्ण के अतिरिक्त किसी भी अन्य की सत्ता स्वीकार नहीं करते। श्रीकृष्ण ही अक्षर ब्रह्म एतं पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। वल्लभसम्प्रदाय में भगवान् की कृपा ही सब कुछ है। भगवान् की कृपा का नाम ही पुष्टि है- कृष्णानुग्रहरूपाहि पुष्टि ।

(पुष्टि कृष्ण के अनुग्रह के रूप वाली है।)

जीव को कृष्ण की कृपा से ही मुक्ति प्राप्त होती है। अपने प्रयास से जीव मुक्त नहीं हो पाता। कृष्ण की भक्ति भी उनकी कृपा से ही प्राप्त होती है।

वल्लभ सम्प्रदाय के सद्धान्तों का परिचय देने के लए वल्लभाचार्यजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिर वृन्दावन, गोवर्धन, पारसौली और नाथद्वारा में हैं। वल्लभाचार्य के गोलोकवास के पश्चात् उनके पुत्र वठ्ठलनाथजी वल्लभ सम्प्रदाय के

आचार्य हुए, तब से अब तक पता के पश्चात् पुत्र गद्दी पर बैठता आया है। इस प्रकार वल्लभाचार्य के परिवार में इस सम्प्रदाय की परम्परा चल रही है। वल्लभ सम्प्रदाय में सबसे ऊँचा पद आचार्य का है। वर्तमान काल में वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य राजस्थान में स्थित नाथद्वारा में वराजते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों के लए नाथद्वारा तीर्थस्थान है। नाथद्वारा में स्थापित श्रीकृष्ण की काले पत्थर की मूर्ति के दर्शन को महान् पुण्य माना जाता है।

प्रश्न सं 15- हृदय के पारखी सूर ने सम्बन्ध-भावना की शक्ति का अच्छा प्रसार दिखाया है।" इस कथन पर वचार कीजिये।

उत्तर-मुरली से सम्बन्ध-भावना- प्रय से संबंधित वस्तुओं के प्रति हृदय में भाव-धुभावों का उत्पन्न हो जाना स्वभावं है। कृष्ण गोप-गोपी, यशोदा-नन्द आदि के प्राण है। कृष्ण से संबंधित प्रत्येक वस्तु उनके लए अत्यन्त प्रय है। कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तुएँ जो संयोग के समय अत्यन्त सुखदायक प्रतीत होती थीं, उनके मथुरा चले जाने पर वे ही सब वस्तुएँ क्लेशकारिणी हो जाती हैं। सर्वप्रथम उनकी मुरली की ही बात की जाए। 'सूरसागर' में मुरली से संबंधित अत्यन्त रसयुक्त प्रकरण हैं। इसके प्रसंग से गोपियों की मनोदशाओं का अच्छा उद्घाटन हुआ है। उनके लए मुरली कोई जड़ पदार्थ न रखे उनकी सजनी बन जाती है। जब वे इसे श्रीकृष्ण का अघर-रस पान करते देखते हैं तो ईर्ष्या की भावना से तिल मला उठती हैं। वे इसे स्वाधीन-पतिका के रूप में देखकर क्षुब्ध भी होती हैं। उन्हें ऐसा लगता है, मानो इसने कृष्ण को सब प्रकार से अधीन कर रखा है। उन्हें कृष्णजी कमर झुकाकर इसकी खुशामद और सेवा में रत दिखाई देते हैं। यह स्वयं अघर-सेज पर शायन करती है और कृष्ण से पैर दबवाती है। उन्हें ऐसा लगता है कि इसी के कारण सम्भवतः कृष्ण उनसे खंचे-खंचे से रहते हैं। यह चुपके-चुपके उनकी बुराई करती दिखती होती है। तभी तो मुरली-वादन के रूप में वे नासापुटों को फुलाकर हम पर गुस्सा करते हैं। देखिये कतना सुन्दर वर्णन है-

"मुरली ताऊ गोपालहिं भवति।

सुनु री सखी जद प नंद-नन्दहि नाना भाँति नचावति ।

राखति एक पाँय ठाड़ो करि, अति अधकार जनावति।

अति आधीन सुजान कनौदे गरिधर नारि नचावति।

उद्धव से सम्बन्धित भावना-उद्धवजी के प्रति भी गोपियों की समस्त-भावना सम्बन्ध भावना के रूप में ही है। उन्हें देखकर तथा यह जानकर कि वे कृष्णजी के सखा हैं, गोप-गोपी आदि उनकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। वे सब उनके पास अत्यन्त प्रेम और आदर के साथ जाते हैं और उनसे कृष्णजी का समाचार लेते हैं। गोपियाँ यह जानकर, कि ये कृष्ण के अभिलक्षण-हृदय सखा हैं, एक सर्वथा इच्छुक व्यक्ति को भी चर-परिचय मान लेते हैं। वे उन्हें भ्रमर के रूप में सम्बोधन करके जो मन में आता है, वह कहती हैं-

"मधुकर तुम रस-लम्पट लोग।

कोमल-कोस में रहत निरन्तर हमहिं सखावत जोग॥"

वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।  
तुभ कारे सुफलक सुत कारे कारे मधुप भँवरे।।"

प्रश्न सं 16 - "सूर की रचना जयदेव और वद्यापति के गीति-काव्यों की शैली पर है।" स्पष्ट कीजिये।

उत्तर- "वयोगी होगा पहला कव, आह से निकला होगा गान।

उमड़कर आँखों से टहलते हुए, बहुत होगी कवता अनजान।"

पं० सुमित्रानंदन पन्त की इन मीना के आधार पर कहा जा सकता है क वरह-गीतों के प्रस्फुटन से ही कवता का जन्म हुआ है। गीति-काव्य की प्राचीनता पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्टतः वदित होगा क भारतीय साहित्य में सामवेद गीतों का प्रथम ग्रंथ है। आरम्भ में गीति-काव्य धार्मिक पृष्ठभूमि को लिए हुए था तथा गीतों की परंपरा अलौकिकता की ओर ही अधिक केंद्रित थी, हाँ, मध्यकालीन, राजनीतिक हलचलों ने गीतों में ओज की प्रधानता ला दी थी, लेकिन वह बहुत थोड़े दिन तक रह सकी। शान्ति के वातावरण में पैठना गीत का स्वभाव बन गया था। जब कव एकान्त में प्रतियोग्यों, तभी सहज हृदयोद्गारों के रूप में गीत प्रस्फुटित हो उठ। सदैव से ही इनमें हृदय के कोमलतम भावों का प्रकाशन होता रहा है।

जयदेव, वद्यापति तथा चण्डीदास के गीति-काव्य गीतों की रचना संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में हुई है, लेकिन जो महता जयदेव के 'गीत-गोवन्द' को प्राप्त हुई। वह अन्य किसी गीति-काव्य को नहीं। गीतों के लिए जिस माधुर्य और मार्दव की अपेक्षा होती है, उसका उत्कृष्टतम रूप 'गीत-गोवन्द' में ही प्राप्त होता है। जयदेव ने अपने इस गीति-काव्य में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रणय-लीला का ही गान किया है। उसमें शृंगारिकता तथा अश्लीलता का इतना आधिक्य हो गया है क कुछ लोगों को उसमें लौकिकता का आभास होने लगता है। कुछ भी हो, इतना अवश्य सहमत होंगे क उसमें गेयत्व की अपूर्व प्रधानता है। उसमें कृष्ण से संबंधित कोमल वृत्तियों को लेकर कोमलकान्त पदावली में बड़े ही सुन्दर गीत रचे गए हैं। जयदेव का ही अनुकरण चण्डीदास और वद्यापति ने किया। वषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से इन दोनों कव्यों ने जयदेव का अनुकरण किया है। जो लोक प्रियता जयदेव के गीतों को प्राप्त हुई थी, वही लोक प्रियता इन दोनों कव्यों के गीतों को भी प्राप्त हुई। इन गीति-काव्यकारों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही क सूचनाएं अपने काव्य में गायत्व को ही प्रधानता दी। सूचनाएं अपने पदों में कथात्मकता का अधिक से अधिक बहिष्कार किया है। इसके अतिरिक्त ये अपने गीतों में धर्मता का रंग भी अधिक नहीं मलते हैं। इनके गीतों में प्रेम तथा भक्ति में कोई भेद नहीं दिखाई देता।

प्रश्न सं 17- महाकव सूरदास का जीवन परिचय एवं उनकी साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

उत्तर- सामान्य परिचय-

नाम महाकव सूरदास  
जन्मवर्ष सन् 1478 ईस्वी (संवत् 1535)  
जन्म स्थान - सनकता (था सीही ग्रा)  
पता का नाम पंडित रामदास जी  
माता का नाम जमुनादास  
मृत्यु सन् 1503 ईस्वी (पारमौली में)

गुरु और भक्ति-

गुरु का नाम - श्री वल्लभाचार्य जी

भक्ति- श्री कृष्ण के अनन्य भक्त

दीक्षा- वल्लभाचार्य जी ने उन्हें पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की पद गाने का निर्देश दिया ।

अष्टछाप - सूरदास जी वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ प्रऔर सबसे प्रमुख कव माने जाते हैं।

साहित्यिक परिचय -

महाकव सूरदास की प्रमुख रचनाएँ

इस प्रकार हैं-

सूरसागर - यह उनकी सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक कृति है, जिसमें श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं और भ्रमरगीत का अनूठा वर्णन है।

साहित्य लहरी - इसमें वृषभ वृष्यों पर कूट पद रचे गए हैं।

सूरसारावली - उसमें श्रीमद्भागवत के आधार पर कथा प्रसंग संकलित है।

प्रश्न सं 18- सूरदास के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

उत्तर - सूरदास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के प्रमुख कव हैं। वे कृष्ण-भक्ति शाखा में सर्वश्रेष्ठ कव्यों में अग्रगण्य कव हैं। उनकी रचनाओं में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अटूट प्रेम, भक्ति और समर्पण का सुन्दर चित्रण मिलता है।

सूरदास के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. कृष्ण-भक्ति - उनके काव्य का प्रमुख विषय श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ, रास-लीला और भक्तिभाव है।

2. वात्सल्य रस - उनके काव्य में वात्सल्य रस प्रमुख है। इसीके कारण सूरदास जी को वात्सल्य सम्राट की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। उन्होंने माता यशोदा और बालकृष्ण के प्रेम का अत्यन्त मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

3. शृंगार रस - सूरदास के काव्य में शृंगाररस की झलक भी स्पष्ट रूप से झलकती है। उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण अत्यन्त मधुरता और भावुकता से प्रस्तुत किया है।
4. सरल एवं मधुर भाषा- उन्होंने अपने काव्य में सरल, सहज और मधुर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।
5. अलंकारों का प्रयोग- उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है।

प्रश्न सं 19- सूर के 'भ्रमर गीत, का परिचय दीजिए।

उत्तर - महाकव सूरदासजी ने श्रीमद्भागवत के आधार पर ही सूरसागर की रचना की है, कन्तु उसमें अनेक नवीनताओं को जन्म देकर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन भी किया है। सर्वप्रथम सूरदासजी ने हिन्दी में 'भ्रमरगीत' की रचना की। 'भ्रमरगीत' की लोकप्रियता उस कारण बहुत अधिक हुई। क्योंकि सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा से अपने भ्रमर-गीत में परिवर्तन कर दिया था। सूरदास के 'भ्रमरगीत' के अनुसार उद्धव ब्रज में आकर नन्द और यशोदा के समीप नहीं आये। गोपियाँ उनके रथ को दूर से ही देखती हैं। उन्हें संदेह होता है कि संभवतः कृष्णजी आ रहे हैं। देखने पर कृष्ण-सा उद्धव मले और गोपियों ने पूछा। उद्धवजी गोपियों के कृष्ण-मोह को दूर करने के लिए ज्ञान की बातें करने लगे। गोपियाँ उनकी बातों को सुनती और उत्तर देती रहीं।

गोपियों के उत्तर के प्रसंग में श्रीमद्भागवत के 'भ्रमरगीत' के आधार पर सूरदास जी भ्रमर की कल्पना करके गोपियों द्वारा 'भ्रमर', 'अल', 'मधुप' आदि सम्बोधनों द्वारा उनकी दशा का चित्रण करना आरम्भ कर देते हैं। सूरदास जी उद्धवजी और गोपियों के आधार पर एक ओर ज्ञान की नीरसता और भक्ति की सरसता दिखाकर भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। दूसरी ओर वरह और उपालम्भ-काव्य का एक अनुपम आदर्श उपस्थित करते हैं। गोपियाँ कभी अपना "सहज लरिकाई को प्रेम" बताकर उद्धव के सम्मुख अपनी ववशता प्रगट करती हैं। और कभी "एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस" तथा अब "कैसे हूँ निकसत नहीं ऊधौ तिरछे है जु अड़े" द्वारा उद्धव को निराकार ब्रह्म को भजने में असमर्थता प्रकट करती हैं। दूसरी ओर ऐसा प्रतीत होता है मानों ने ज्ञानमार्ग का उपहास करती हैं।

प्रश्न सं 20 - सूरदास के काव्य में वात्सल्य रस का वर्णन कीजिए।

अथवा

सूरदास को "वात्सल्य रस का सम्राट" कहा जाता है। प्रस्तुत कथन का मूल्यांकन कीजिए।  
उत्तर- हिन्दी साहित्य में महाकव सूरदास को वात्सल्य रस का सम्राट कहा जाता है। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास की प्रशंसा करते हुए कहा था कि "सूरदास वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आए हैं।" सूरदास को हिन्दी साहित्य में वात्सल्य रस का सम्राट कहा जाता है। उनके काव्य में भगवान श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप का अत्यन्त सजीव, स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी चित्रण मिलता है।

माता जशोदा का वात्सल्य, कृष्ण की चंचल बाल-लीलाएँ, माखन चोरी, गोप-वालको के साथ खेलना तथा इनकी नटखट हरकतें अत्यंत आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं।

सूरदास ने बाल-मनो वज्ञान का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके अनुसार बालक कृष्ण केवल भगवान नहीं, बल्कि एक सामान्य बालक की तरह हसते, खेलते और शरारतें करते हैं। उनके काव्य में वात्सल्य रस अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है।

सूरदास ने अपने वात्सल्य वर्णन में भावनाओं को उर्वरता प्रदान की है, जो उनकी सर्जनात्मक क्षमता, संबंधों की गरिमा, प्रेम एवं कर्तव्य के अनुकूल वस्तुतः तथा रसमग्न हृदय की अनुभूतिशीलता को रमणीय प्रतिपादक शब्दों में बाँधकर मूर्तिमान कर देती है।.. महाकव सूरदास जी का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य में अनूठा है। उनके इस वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वात्सल्य के सम्बन्ध में छोटी-छोटी सी बात भी उनकी दृष्टि से नहीं छूटी है। कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन भक्त शरोमण सूरदास ने बड़े ही मधुर और हृदयहारी पदों में किया है। इनका सरल, स्वभाविक और पूर्ण चित्र तो हमारे हृदय को तो हरता ही है साथ ही साथ माता जशोदा के मातृ हृदय का वात्सल्यपूर्ण सूक्ष्म वर्णन सब्दय पाठक को भाव वमग्ध करता है।

प्रश्न सं 21- 'सूर का दैन्य भाव' पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर - सूरदास जी कहते हैं कि भक्त के हृदय में दैन्य भावना अर्थात् दीनता का भाव होना अति आवश्यक है। सूर ने उसी भावना से अपने प्रभु को पाने की इच्छा प्रकट की है। उनके काव्य में दैन्य भाव की निम्नांकित उद्गारों में व्यंजना हुई है - "मो सम कौन रुटिन खलकामी।

तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी।"

महाकव सूरदास जी ने ईश्वर (कृष्ण) में वनय करते हुये अपने को पापी और ईश्वर (कृष्ण) को पापियों का उद्धार करने वाला बताया है। नन्द जी मथुरा से लौटकर आ जाते हैं तथा उनके साथ यशोदा जी कृष्ण को न देखकर मूर्छित हो जाती है। और नन्द जी से भला-बुरा कहने लगती है। कभी-कभी नन्द भी कृष्ण के वियोग में दीन-दुःखी यशोदा को ता डत मरने लगते हैं, कहते हैं -

" तब तू मारवोई करति ।

रि सन आगे कहि जो आवत, लै भाड़े भरति ॥"

यशोदा के मा र्मक दैन्य भाव का प्रस्फुटन निम्न ल खत' पद में द्रष्टव्य है-

" संदेसो देवकी सो कहियो ।

हो तो धाय तिहारे सुत की दया करत ही रहियो ।"

इस प्रकार महकव सूरदास ने अपने काव्य में दैन्य भाव का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, जो स्वाभाविक और आकर्षक है।

प्रश्न सं 22- सूरदास पर लखी गयी तीन समीक्षात्मक पुस्तकों एवं उनके लेखकों का नाम ल खए ।

उत्तर- सूरदास पर लखी गई तीन समीक्षात्मक पुस्तक इस प्रकार हैं

| (पुस्तक)         | (लेखक)                       |
|------------------|------------------------------|
| 1. सूरदास -      | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल       |
| 2. महाक वसूरदास- | आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी   |
| 3 सूरसाहित्य-    | आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी |

प्रश्न सं 23- सूरदास की सगुणोपासना की ववेचना कीजिए ।

अथवा

सूरदास के काव्य में सगुण उपासना पर अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।

उत्तर - सूरदास भक्तिकाल की सगुण शाखा के वैष्णव क व हैं। उन्होंने अपने काव्यों काव्यों में सगुणोपासना का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है -

“अ वगत-गति कुछ कहत न आवै ।

ज्यों गूंगे मीठे फल को रम अन्तरगत ही भावै ।

सब व ध अगम वचारहिं तातै सूर ममुन पद-गा।”

मह पद 'सगुणोपासना' में सम्बन्धित है। इस पद में उन्होंने सगुण साकार भगवान के प्रति अपने भक्ति भाव को अ भव्यक्त किया है। निर्गुण निराकार ईश्वर की गति के बारे में कुछभी नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार कोई गूंगा व्यक्ति मीठे फल को खाता है तो उसके हृदय को असीम आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु उस फल के मीठे स्वाद को वह मन ही मन में महसूस कर सकता है, परन्तु गूंगे होने के कारण वह उस उस मीठे स्वादिष्ट फल का वर्णन नहीं कर सकता है। उसी प्रकार से निर्गुण ब्रह्म की भक्ति में साधक को अलौकिक आनन्द की प्राप्ति तो होती है। यह प्राप्ति उसे संतोष प्रदान करती है परन्तु मन और वाणी दोनों से अदृष्ट होने के कारण वह उसका वर्णन नहीं कर सकता। निर्गुण निराकार व्रत सब तरह से अगम-अगोचर है। इस लए मैंने इश्वर के सगुण रूप की भक्ति करने का निश्चय कर लिया है।

सगुण भक्तिधारा के क वयों की अपने आराध्य देव के प्रति गहरी आस्था है। सगुण भक्तिधारा के क व ईश्वर में वश्वास करते हैं। कृष्ण की उपासना में सूरदास ने सूरसागर की रचना की जो कृष्णाश्रयी शाखा के प्रमुख रचनाकार और रचना है। भारतीय इतिहास में कृष्ण का चरित्र एक ऐसा चरित्र है, जो अपने सर्वतो-मुखी कन्तु परस्पर वरोधी व्यक्तिव्य, लोकनायकत्व, सामाजिक एवं धा र्मक रुढ़ियों का भजन, वलासी होते हुए भी यो गराज, राजनीति और कुठनीति में प्रवीण, अमुर- वनाशक, उद्भट वद्वान, युगद्रष्टा आदि वशेषताओं से मुक्त है। सूरदास ने कृष्ण के इसी चरित्र को अपने काव्य का वषय बनाया है।

प्रश्न सं 24 - सूरसागर को महाकाव्य क्यों नहीं माना जाता है ?

उत्तर- 'सूरसागर' सूरदास द्वारा रचित एक वशाल व अनुपम ग्रन्थ है। वस्तुतः यह न तो महाकाव्य की श्रेणी में और न खण्डकाव्य की श्रेणी में आता है। उसमें सूरदास द्वारा रचे गये भक्तिपरक पदों का संकलन किया गया है। किसी ग्रन्थ को महाकाव्य मानने के लिए निम्न लक्ष्य लक्षणों का होना आवश्यक है।

1. कथावस्तु की कथा वस्तुतः सुनियोजित जीवन के व्यापक क्षेत्र मार्मिक व सरल प्रसंगों का वर्णन तथा ऐतिहासिक व काल्पनिक होनी चाहिए।
2. नायक को महान गुणों से युक्त होना चाहिए।
3. देशकाल व वातावरण, युगानुरूप यात्रानुकूल होना चाहिए।
4. वध रसों का समावेश उदात्त रस भावों की सद् ध होनी चाहिए।
5. इसका उद्देश्य चतुर्वर्ग की प्राप्ति देशप्रेम, वीरता, त्याग, प्रेम व साहस आदि से युक्त होता है।
6. भाषा सरल, स्वाभाविक, सजीव, भावानुरूप प्रभावोत्पादक स्वाभाविक अलंकार तथा मुहावरों से युक्त होनी चाहिए।
7. छन्द मावानुकूल होना चाहिए।

इन समस्त लक्षणों पर दृष्टिगत करने पर हम पाते हैं कि सूरसागर में ये तत्त्व वद्यमान नहीं। 'सूरसागर' की कथावस्तु भाव प्रधान है परन्तु यह महाकाव्य की भाँति व्यापक एवं वस्तुतः नहीं है। मुख, प्रतिमुख, वमर्श एवं निर्वहण सन्धियों का इस काव्य में अभाव है। इस लिए शास्त्रीय दृष्टि से इस काव्य में महाकाव्य के तत्त्वों का अभाव होने के कारण 'सूरसागर' को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न सं 25- सूरदास के वात्सल्य वर्णन पर निबन्ध लिखिए।

अथवा

सूर का वात्सल्य वर्णन अतुलनीय है।

अथवा

'सूरदास' को मातृहृदय मिला था, प्रस्तुत सन्दर्भ में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

सूरदास' का वात्सल्य वर्णन -

सूर ने वात्सल्य-भाव का वर्णन सजीवता और मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। वस्तुतः सूर के अन्तर्गत वात्सल्य भाव की यह अनुभूति गहन एवं गम्भीर दिखाई देती है। यही कारण है कि सूर का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य में अनुपम और अद्वितीय माना गया है। यही नहीं, तुलसी आदि उच्चकोटि के कवियों भी वात्सल्य वर्णन उतना सरस एवं प्रभावोत्पादक रूप से नहीं कर सके हैं। जितना सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है।

आचार्य समचन्द्र शुक्ल ने कहा, "आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार, और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी - सी जान पड़ती हैं, कहकर सूर की प्रशंसा की है।

डॉ. रामकुमार वर्मा, ने बाल-कृष्ण के शैशव में श्रीकृष्ण के मचलने में माँ यशोदा के दुलार में हम वशव्यापी माता-पुत्र का प्रेम देखते हैं कहकर सूर के वात्सल्य वर्णन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने 'सूर' का वात्सल्य -भाव भी वशव साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है, कहकर सूर की वात्सल्य की प्रशंसा की है।

वस्तुतः इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं है कि सूर ने श्रीकृष्ण की बाल-क्रीडाओं का ऐसा हृदयग्राही एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया है, जिसे पढ़कर या सुनकर हृदय उस और आकृष्ट हो जाता है। वास्तव में बाल-सुलभ चेष्टाओं के मनोमुग्धकारी चित्रों का जितना वपुल भण्डार सूर - सागर में वद्यमान है उतना अन्यत्र कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता है।

सूर के इन चित्रों में व वधता है, आकर्षण है, स्वाभाविकता है और रमणीयता, जिसके कारण कोई भी दूसरा कव सूर के वात्सल्य वर्णन की समानता तो दूर उसके करीब भी नहीं पहुँच सका है।

प्रश्न सं 26- पुष्टिमार्ग का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए ।

अथवा

पुष्टिमार्ग पर अपने वचार प्रस्तुत कीजिए ।

उत्तर - वल्लभाचार्य जी द्वारा शुखाद्वैतवादी दार्शनिक मत पर आधारित जिस भक्ति मार्ग का प्रवर्तन किया गया उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में ईश्वर के अनुग्रह को पोषण कहा गया है-पोषणं तदनुग्रहः ।

वल्लभ ने पुष्टि का वचन करते हुए भागवत के उपयुक्त कथन को आधार माना है। बल्लभ के अनुसार, 'कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टिः कालादि बाधक कालादि के प्रभाव को रोकने वाला कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टिमार्गीय भक्ति केवल अनुग्रह से ही साध्य है। सूरदास ने भगवदनुग्रह को अनेक स्थलों पर स्थापित किया है-

मेरे तो तुम पति. तुमही गति, तुम समान को पावै । सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा बिनु, को गयो दुःख वसरावे ॥

यह कृपा तत्त्व मध्यकालीन भक्ति भावना का अभिन्न अंग था। तुलसी, कबीर, मीरा. जायसी सभी ने इसकी महत्ता एक स्वर में स्वीकार की है। किन्तु पुष्टि मार्ग में पुष्टि (कृष्ण की कृपा) को भक्ति का मूलधार माना गया है। तथा उसकी व्याख्या, ववेचन तथा महिमा को बहुत विस्तार दिया गया है। जहाँ लौकिकी और वैदिकी सद्धियों यत्न में नहीं अनुग्रह से प्राप्त होती हैं। जहाँ अनेक सम्बन्ध ही कृष्ण की इच्छा से साधन रूप और फल रूप बन जाते हैं। जहाँ वयोग में भी समस्त लीलागत आनन्दानुभव के कारण संगम सुख की प्राप्ति होती है, जहाँ सर्वभाव से वषय सुख त्याग और शारीरिक समर्पण है उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति का आरम्भ आत्म समर्पण से होता है। जीव अनन्तकाल से ईश्वर से वमुक्त होकर ईश्वर के साथ अपने सभी सम्बन्ध को भूलकर दुःखी होते किन्तु भगवान की कृपा से अपना

सब कुछ त्याग कर सुख का अनुभव कर सकता है। जीव के समस्त गुण-दोष जब ब्रह्म के प्रति समर्पित होते हैं तो गंगा की पावनधारा में वलीन होने वाले गन्दे जल की तरह शुद्ध हो जाते हैं। सूरदास ने उसी भाव को यों व्यक्त किया है-

इक नदिया इक नार कहावत, मैली नीर भरौ।

जब मली गए तब एक बरन है गंगा नाम परौ।

पुष्टिमार्ग में मंत्र-तंत्र गौण हो जाते हैं। एकमात्र श्री कृष्ण की शरण में रहने वाला भक्त आसक्तिहीन हो जाता है।

प्रश्न सं 27- सूरसागर के आधार पर यशोदा की सारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।

अथवा

सूरसागर में सूरदास जी की यशोदा जी का परिचय दीजिए ।

उत्तर - सूरदास ने 'सूरसागर में' यशोदा जी के वध रूपों को वर्णित किया है। सूरदास ने यशोदा का चित्रांकन करते समय मानों उसे वात्सल्य व ममता की साक्षात् मूर्ति के रूप में चित्रित किया है। कभी वह वात्सल्य की मूर्ति दिखाई पड़ती है तो कभी सुन्दर पुत्र की माता होने पर गर्वीली स्त्री के रूप में दिखाई देती है। परन्तु कहीं-कहीं पर हम उन्हें करुणा की मूर्ति के रूप में भी देखते हैं। श्रीकृष्ण के जन्म के उपरान्त यशोदा का एक-एक अंग रोम-रोम मानो पुत्र वात्सल्य के रस से सराबर हो गया है। वह कभी उसे पालने में सुलाते समय आँखों के द्वारा ही अपनी ममता को लुटा देती तो कभी उसे सुलाने के लिए लोरी गा गाकर सुनाती हैं "जसोदा हरि पालने सुलावै

हलरावै दुलरावै मल्हवै

जोई सोई कहूँ गावै"

परन्तु यशोदा जी को छोड़कर कृष्ण जब मथुरा जाने लगते हैं तो मानों यशोदा की सारी ममता करुणा में बदल जाती है। उनके मन में पुत्र के प्रति जो प्रेम का सागर था वह आँखों के रास्ते बाहर आने का प्रयास करता है। जब यशोदा को पता चलता है कि वास्तव में देवकी कृष्ण की माता है तो वह सारी ममता को भूलकर दयनीय स्वर से देवकी के पास संदेश भजवाती है

"देवकी सौ कहियों

हों तो धाइँ तिहारे सुत की भया करत ही रह्यौ ।"

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'सूरसागर में' यशोदा का चित्रांकन वात्सल्य की पृष्ठभूमि पर हुआ है।

प्रश्न सं 28- सूरसागर के आधार पर राधा' हा चरित्र चित्रण प्रस्तुत कीजिए ।

अथवा

सूरदास की राधा का चारित्रिक मूल्यांकन कीजिए ।

उत्तर-सूरदास जी ने 'सूरसागर' में राधा का व्यापक चित्रण किया है और उसे अपने काव्य की नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। 'सूरसागर' में राधा सबसे पहले भोली-भाली, अल्हड़ कशोरी के रूप में न उपस्थित होती है। परन्तु ज्यों-ज्यों वह कृष्ण के प्रेम में पड़ती हैं त्यों-त्यों वह सारा भोलापन छोड़कर अंचल व वाकपटु कशोरी के रूप में प्रस्तुत होती है।

'सूरसागर' में राधा एकनिष्ठ प्रेमिका के रूप में चित्रित की गई है। सूरदास ने महारास में राधा व कृष्ण का ववाह दर्शाकर राधा को इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। तथा इसका मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है। अतः संक्षेप में सूरदास कृत 'सूरसारावली' एक स्वतन्त्र व प्रमाणक रचना है। जिसमें वष्णु के चौबीस अवतारों तथा वल्लभ सम्प्रदाय के नित्य उत्सव का सुन्दर वर्णन है।

प्रश्न सं 29- कृष्ण की रासलीला के आध्यात्मिक पक्ष पर वचार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर- श्रीमद्भागवत में 'राम' को 'नित्य' कहा गया है। इसके अनुसार श्री कृष्ण ब्रह्म है जब क गो पयाँ ऋचाएँ हैं। 'शब्द और 'अर्थ' के नित्य सम्बन्ध की भाँति कृष्ण गो पयाँ में भी नित्य सम्बन्ध है। इस नित्य सम्बन्ध को दर्शाने वाली 'रासलीला' भी नित्य है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है क श्रीकृष्ण एवं गो पयाँ की नित्य लीला वस्तुतः आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा की स्मृष्टि की एक सतत प्रक्रिया है। आध्यात्मिक दृष्टि से रासलीला में गो पयाँ जीवों का प्रतीक हैं जो परमात्मा (श्रीकृष्ण) में मलने के लए आतुर हैं। बाँसुरी वह वद्या माया है जो जीव रूपी गो पयाँ को सभी लौकिक बन्धनों, झूठे रिश्ते-जातों को तोड़कर परब्रह्म से प्रेम करने के लए प्रेरित करती है।

गो पयाँ और राधा के मन में रासलीला के मध्य में जल गर्व उत्पन्न हो जाता है, तब श्रीकृष्ण अदृश्य हो जाते हैं, परन्तु ज्यों ही उनका गर्व नष्ट होता है, तब वे पुनः उनके बीच प्रकट हो जाते हैं। इस क्रीड़ा की यह आध्यात्मिक अभिव्यंजना है क जलजीव रूपी गो पयाँ परमात्मा से तभी मलन कर पायेंगी, जब वह अहं भाव से मुक्त होगी। आध्यात्मिक दृष्टि से यह महारास ही आत्मा का पूर्णानन्द में लीन होना है। अस्तु कहा जा सकता है क जहाँ स्थूल दृष्टि से श्रीकृष्ण - राधा व गो पयाँ की रासलीला में काम भावना दिखाई देती है वहीं आध्यात्मिक हैं। दृष्टि से रासलीला का एक-एक तत्व, अंग इस संसार के जीव 'आत्मा', ब्रह्म, प्रकृति का प्रतीक है तथा यह सम्पूर्ण लीला आत्मा का परमात्मा में मलन व जीव को ईश्वर का अनुग्रह का सांकेतिक रूप है।

प्रश्न सं 30- भ्रमरगीत परम्परा की पृष्ठभूमि का उल्लेख अपने शब्दों में कीजिए।

उत्तर - भ्रमरगीत परम्परा में भागवत काल का मूल्य उद्देश्य ववे चत करना आवश्यक है, क्योंकि भागवत काल का उद्देश्य भ्रमरगीत की रचना में ज्ञान, कर्म, भक्ति में समवन्धन स्थापित करने का था। भागवत के अनुसार श्री कृष्ण का ब्रजपरित्याग, गोपियों के प्रेम को द्रढ़ बनाने के लिए ही था।

भ्रमरगीत का उद्गम मुख्य रूप से श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्द के 46 वें तथा 47 वे में अध्याय से माना जाता है। 46 वें अध्याय में उद्धव की ब्रजयात्रा, उनका नन्दबाबा, माता यशोदा के मध्य वार्तालाप। जब क 47 अध्याय में गोपियों और उद्धव का पारस्परिक वार्तालाप वर्णित है। जिसमें क 12 से लेकर 21 श्लोकों में यह प्रकरण समाप्त हो जाता है।

प्रश्न सं 31- सूरदास के भ्रमरगीत का उल्लेख कीजिए ।

अथवा

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत परम्परा का उद्भव का वर्णन कीजिए।

उत्तर - 'भ्रमरगीत' के सर्वप्रथम दर्शन श्रीमद्भागवत में होते हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत काव्य में सर्वप्रथम रचनाकार महाकवि सूरदास जी हैं। सूर द्वारा ही सर्वप्रथम हिन्दी-साहित्य में प्रतिपादन किया गया इस लिए हिन्दी में इस परम्परा का विकास महाकवि सूर से ही प्रारम्भ होता है। 'भ्रमर-गीत' परम्परा को व्यापक, व्यवस्थित और वकसत रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय सूरदास को ही प्राप्त है। सूर की रचना 'सूरसागर' में भ्रमरगीत प्रसंग को अत्यन्त मार्मिक और वशद रूप से प्रदर्शित किया गया है। 'सूरसागर' में भी तीन 'भ्रमरगीत' हैं। इनमें से एक भ्रमरगीत में केवल दो पदों का ही है। इसमें सगुण एवं निर्गुण का ववेचन हुआ है। दूसरे भ्रमरगीत में केवल एक ही पद है। सूरसागर का ह तृतीय भ्रमरगीत अत्यन्त वस्तुत है। यह भ्रमरगीत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत है। उद्धव के ब्रज आगमन से पूर्व के पदों में वयोग, ब्रज बालाओं की दशा और कृष्ण के प्रति यशोदा, नन्द आदि के द्वारा भेजे गये संदेश का वर्णन है। संक्षेप में सूरदास का भ्रमरगीत हिन्दी साहित्य का अद्वितीय रचना वधान है।

प्रश्न सं 32- 'भ्रमरगीत' के मुख्य उद्देश्य का वर्णन कीजिए ।

अथवा

'भ्रमरगीत' के माध्यम से सगुण का मण्डन और निर्गुण का खण्डन दर्शाया गया है, प्रस्तुत मत पर वचार प्रकट करें।

अथवा

सूरदास 'भ्रमरगीत प्रसंग' के माध्यम से सगुण का मण्डन और निर्गुण का खण्डन करते हैं, अपने वचार प्रस्तुत करें।

उत्तर - भ्रमरगीत के दार्शनिक उद्देश्य पर वचार किया जाए तो पर स्पष्ट हो जाता है कि उसका मूल उद्देश्य निर्गुण व सगुण की वजय दिखाना है। ज्ञान पर भक्ति की वजय दिखाना है। यहाँ यह भी वचारणीय है कि मध्य युग में जब कि कवियों ने ज्ञान साधन को ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र साधन बताया था वहीं पर सूरदास ने भक्ति को ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र साधन बताया और निराकार के स्थान पर साकार कृष्ण को आराध्य के रूप में उपस्थित किया और उसे ही कार्यक्रम में परिणत करने के लिए 'भ्रमरगीत' की पद्धति को अपनाया भ्रमरगीत उद्देश्य प्रकारान्तर से सूर ने स्वयं प्रकाश डाला है। श्री कृष्ण ने उद्धव को गोप्यों को ज्ञानोपदेश देने के लिए प्रश्न है उन्होंने उद्धव को ही क्यों भेजा ? उसका मूल कारण था कि उद्धव को अपने ज्ञान पर गर्व था । उद्धव को गोप्यों के पास भेजकर श्रीकृष्ण उन्हें गोप्यों की प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता दिखाकर सगुण भक्ति की ओर उन्मुख करना, चाहते थे, ताकि उनका गर्व दूर हो वे सगुण को अपनाएँ। अतः कह सकते हैं। कि सूर के भ्रमरगीत प्रसंग का मुख्य उद्देश्य सगुण का मण्डन और निर्गुण का खण्डन करना है।

प्रश्न सं 33- सूरदास' के भ्रमरगीत की मौलिक उद्भावनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर - सूर ने अपने भ्रमरगीत में प्रमुख मौलिक उद्भावनाओं का प्रतिपादन किया है-

1. निर्गुण निराकार ब्रह्म का खण्डन करना और सगुण साकार ब्रह्म का मण्डन ।
2. गोप्यों के माध्यम से प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करना ।
3. वयोग शृंगार का वर्णन अत्यन्त मकण और मर्म-स्पर्शी स्थिति के साथ करना ।

प्रश्न सं 34- सूरदास 'पुष्टिमार्गक जहाज हैं। सद्ध कीजिए।

उत्तर - सूरदास को पुष्टिमार्ग का जहाज कहते हैं। पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के दो प्रकार बताये हैं-' मर्यादा भक्ति' और 'पुष्टि भक्ति' ।

मर्यादा भक्ति में फल की आसक्ति रहती है जब कि पुष्टि भक्ति में फल की कामना नहीं रहती है। मर्यादा भक्ति में हैन्य भावना का प्रधान्य रहता है जब कि पुष्टि भक्ति में कान्ता भाव की प्रधानता रहती है।

पुष्टि भक्त के चार स्तर हैं- प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्ट पुष्टि और शुद्ध पुष्टि। प्रवाह पुष्टि में भक्त इस संसार में भगवान की कृपा की याचना करता है। मर्यादा पुष्टि में भक्त

इस सांसारिक सुखों को त्यागकर कीर्तन आदि के द्वारा प्रभु की भक्ति करता है। पुष्ट पुष्टि में जीव पर ईश्वर की कृपा हो जाती है फर भी वह भक्ति के साधनों में संलग्न रहता है। शुद्ध पुष्टि की स्थिति में भगवान की लीला से भक्त का मान सक तादात्म्य हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति की यही सर्वोच्च स्थिति है।

'सूरसागर' में पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना पू० कपेण प्रस्फुटित हुई है। ब्रह्म, जीव-जगत, संसार, मामा आदि के सम्बन्ध में' सूर के वचार वल्लभान्यार्य के अनुरूप है।

सूरदास ने अपनी रचना 'सूरसागर' में पुष्टिमार्गीय भक्ति के सद्धान्तों का परिपालन करते हुए उनका काव्यात्मक चित्रण किया। डॉ० ब्रजेश्वर शर्मा ने इस सम्बन्ध में लिखा है पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद सूरदास ने 'शान्ति और प्रीति' के स्थान पर अपने ईष्टदेव के प्रति अधिक आत्मीयता का भाव अपनाया और श्रीकृष्ण के ब्रज के सम्बन्धों के द्वारा अपनी प्रेम भक्ति को प्रकट किया।"

सूरदास भक्त पहले और क व बाद में है पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पूर्व के दास्य भाव की भक्ति करते थे, कन्तु बाद में पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने बाद सख्य वात्सल्य और माधुर्य भाव की प्रधानता हो गई तथा उन्होंने उसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पथ को भी अपनाया। इस प्रकार सूरदास को 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा है।

प्रश्न सं 35- सूरदासजी में जिनकी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्वैदग्ध्य भी है।" इस कथन की पुष्टि कीजिये।

उत्तर- महाक व सूरदास ने 'सूरसागर' में अनेक स्थानों पर भावुकता और वाग्वैदग्ध्य का जो सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है, वह देखते ही बनता है। वे वात्सल्य और वप्रलम्भ श्रृंगार के सर्वश्रेष्ठ क व माने जाते हैं। पहले उनके बाल-वर्णन को ही लिया जाता है। इसके समीप सूरदास ने जो चतुरता एवं वाग्वैदग्ध्य दिखाया है, वह दर्शनीय है। माखन चोरी के प्रसंग में कृष्णजी के माखन चुराने पर तथा उनके मुख को सना देखकर जब माता यशोदा पूछती हैं तो कृष्णजी का उत्तर देखिये। वे कहते हैं क हे माता! मैंने माखन नहीं खाती। मैं तो दोपहर तक गायों के पीछे-पीछे जंगल में फरता रहा हूँ। जिस बर्तन में माखन रखा था, वह तो ऊँचे छींके पर टँगा हुआ है।

माला मुझ छोटे-से लड़के के हाथ इतने ऊँचे पर कैसे पहुँच सकते थे? माता की सन्तुष्टि इतने से ही कैसे हो सकती थी। जब क वह उनका मुँह माखन से सना हुआ देख रही है। कृष्णजी ने इसका भी समाधान किया। उन्होंने कहा क हे माता! ये ग्वाल-बाल सब मेरे दुश्मन बने हुए हैं। गरफ्तार ही बरबस मेरे मुँह पर माखन लपेट दिया है। माता यशोदा लड़के की इस चतुरता पर मुग्ध हो गई और उसे गले लगा लिया।

अपने ही घर में नहीं, एक दिन तो वे कसी दूसरी गोपी के घर माखन की हाँडी में हाथ डाले पकड़े गए, ले कन जिस चतुरता से गोपी की शंका का समाधान करते हैं, यह निम्न ल खत पुरुषों में देखिये-

"हैं जान्यौ यह घर अपनो है या धोखे में आयौ।

देखत ही गोरस में चेंटी काढ़न को कर नायौ ॥"

कृष्ण जी को माखन-रोटी बहुत प्रिय थी, ले कन यशोदाजी बच्चे को दूध पलाना ज़्यादा स्वास्थ्यवर्धक समझकर उन्हें दूध पलाना चाहती थीं। वे कृष्ण को बहकाया-

"कबरी को पय पयहु लला तेरी चोटी वक सत।"

कृष्णजी बहकावे में आ गए और दूध पीने लगे, ले कन साथ ही कहे लगे-

"मैया कबहिं जहाँ चोटी।

कती बार मोहि दूध पवत भई यह अजहूँ है छोटी॥"

कतने उदाहरण दिए जाएँ ? 'सूरसागर' का बाल-वर्णन ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। भ्रमरगीत में सहृदयता- अब तनिक भ्रमरगीत प्रसंग के सम्मिलित भी इस कथन की परीक्षा कर ली जाए। उद्धव की योगचर्चा सुनकर गोपयाँ उनकी बातों का तर्कों से उत्तर नहीं देतीं, वे तो अपना हृदय ही खोलकर रख देती हैं-

प्राण हमारे परम मनोहर कमल नयन सुखरासी।

"का अपराध जोग लख पठवत प्रेम-भजन तजि करत उदासी॥"

उनकी आकृति हर समय हरि दर्शन की भूखी रहती हैं। उनके बिना दिन-रात उनके नेत्रों से अश्रु-वर्षा होती रहती है। कृष्ण तो उनके लिए 'हारिल की लकरी' के समान हैं। उद्धवजी के वचन यद्यपि उन्हें अत्यन्त कटु प्रतीत होते हैं, ले कन तब भी वे नम्रता का ही व्यवहार करती हैं। वे कहती हैं कहे ऊधौ ! हम तो आपका जोग भी मान लेतीं, पर । ववशता तो यह है क जोग भी तो मन से ही साधा जायगा और मन 'हमारे पास रहा नहीं, वह चला गया कृष्ण के साथ। फर दस-बीस मन होते तो एक मन से जोग की साधना भी कर लेतीं। मन तो एक ही है-

"ऊधौ मन नाहीं दस बीस।

एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग को आराधे ईस॥"

अमरगीत में वाग्वैदग्ध्य-यह तो हुई सहृदयता की बात, अब तनिक वाग्वैदग्ध्य भी देखिये। सूरदासजी की गोपयाँ नन्ददास जी की गोपयों की भाँति शास्त्रार्थ नहीं करतीं। वे तो अपनी ववशता का प्रदर्शन ही करती हैं-

"ऊर में माखन चोर गड़े।

आब कैसेहुँ निकसत नरहि ऊधौ तिरछे है जु अड़े।"

"लरिकाई कौन प्रेम कहो अल कैसे छूटत।"